IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रबोधन एवं प्रवर्तन

डॉ. जया शुक्ला
अतिथि व्याख्याता
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
रानी दुर्गावती विष्वविद्यालय
जबलपुर (म.प्र.)

चेतना, कल्पना, भाव, प्रवृत्ति, मनोविज्ञान, विचार तथा अनुभूति को प्रकट करना एक सामाजिक माध्यम होता है, परन्तु उसकी एक वस्तु सदैव रहती है– वह है सामाजीकरण के द्वारा उत्पन्न की गई मानवीयता। उस मानवीय संस्कृति की अनुभूति के जाग्रत रहने के कारण काव्य जीवित रहता है। कवि समाज की प्रत्येक गतिविधि, प्रवृत्ति और परिस्थिति से प्रभावित होकर अपनी प्रतिक्रियाओं तथा अनुभूतियों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है।

कविराज राजशेखर की रचना बालरामायण जो कि नाम से ही प्रकट है कि इसका उपजीव्य काव्य रामायण ही है। कविराज राजशेखर के कृतित्त्व के लिए कहा गया है कि– "भाषा, भाव, रचना विधान एवं शब्द सौन्दर्य के साथ उनके नाटकों में मनोरंजन, लोकोक्तियों एवं तत्कालीन सामाजिक जीवन की कतिपय विषेषताओं का अविकल रूप देखने को मिलता है।" मेरी दृष्टि से बालरामायण में राजा जनक एवं पुरोहित शतानन्द प्रबोधक के रूप में दृष्टव्य हैं, वहीं सीता प्रवर्तक के रूप में दिखती हैं। मैंने यहॉ बालरामायण के कतिपय प्रसंगों को ही उद्घृत किया है, ऐसे प्रसंग जो कि सामाजिक एवं व्यावहारिक जीवन के लिए एक शिक्षक है, आदर्श है एवं आवष्यक है। विशेष रूप से बालरामायण के चतुर्थ अंक के शार्दूलविक्रीडित छन्द में लिखे गए तीन श्लोक जो कि भारतीय संस्कृति की अक्षुण्ण परम्परा का बोध कराकर सहृदय को निश्चित रूप से आकृष्ट करते हैं।

बालरामायण की सीता जो कि पृथ्वी पुत्री हैं, देवी हैं, व्यवहारिक, सामाजिक, शास्त्रीय व तात्त्विक वेत्ता हैं, ज्ञानी हैं पर फिर भी सामाजिक दायित्वों के बन्धन एवं स्नेह के कारण राजा जनक एवं पुरोहित शतानन्द के द्वारा सीता को विदाई के अवसर पर नारी सामाजिक समरसता के लिए आवश्यक निर्देश दिए जो कि वर्तमान युग में निश्चय ही प्रासंगिक है, आवश्यक है। सबसे पहले शतानन्द स्नेहभाव से पूर्ण होकर सीता की ठुड्डी को उठाकर कहते हैं :–

"यस्यास्ते जननी स्वयं क्षितिरियं योगीश्वरोऽयं पिता
मातर्मैथिलि शिक्ष्यते कथय किं तस्याः सुजातेस्तव
स्नेहात्केवल मुच्यते पुनरिदं स्त्रीणां पतिर्देवतं
यद्भयास्त्वमपास्य धर्ममपरं छायेव रामानुगा।।"

मातः मैथिलि! जिसकी पृथ्वी स्वयं माता है और ये योगीश्वर पिता हैं ऐसी सुजन्म वाली तुम्हें क्या शिक्षा दी जाये। स्नेह से केवल यही कहा जा रहा है कि स्त्रियों का पति देवता है। तुम दूसरे धर्म को छोड़कर केवल राम की वशानुवर्तिनी होना।

यहाँ आचार्य शतानन्द एक सामाजिक संरक्षक की भांति, जिस तरह जब किसी बालक को एक पिता स्नेह से स्वयं के निर्देश को सुनने व मानने के लिए जो कृत्य करता है वही शतानन्द के द्वारा स्नेहावश सीता को पत्नि का कर्त्तव्य पति की छाया की भॉति अनुगामिनी बनना है, इस ओर संकेत कर रहे हैं। शतानन्द की यह शिक्षा सीता के व्यवहार व कार्यरूप में वनगमन के समय देखने को मिलती है। जब वृद्धा स्त्रियों के द्वारा पिता तथा श्वसुर के यहॉ स्थित रहते हुए, रामभद्र के आगमन की प्रतीक्षा करने को कहा क्योंकि सीता सुकुमारी हैं और विन्ध्याचल के प्रदेश अलङ्घ्य है। सीता के द्वारा कण्ठावरोध के कारण वचन नहीं बोले गए वरन् पत्रिका में लिखा गया, वे वचन उनकी पतिव्रत धर्म के दृढ़ कर्त्तव्य–निष्ठता को प्रदर्शित करते हैं–

"किं तातेन नरेन्द्रशेखरशिरवालीढाग्रपादेन मे
किं वा में श्वशुरेण वासवसभासिंहासनार्द्धासिना।
उद्देशा गिरयश्च ते वनमहीं सा चैव मे वल्लभा
कौशल्यातनयस्य यत्र चरणौ वन्दे च नन्दामि च।।"

राजा के शिरों से जिनके पैर चूमे जाते हैं उन पिताजी से मेरा क्या और इन्द्र सभा के सिंहासन के अर्धभाग में बैठने वाले श्वसुर से क्या? वे ही पर्वत मेरे देश हैं और वनभूमि ही मेरी प्रिय है जहॉ कौशल्या के पुत्र राम के चरणों की वन्दना करूँ और प्रसन्न होऊँ। सीता के इन कथनों में दृढ़ता के साथ ही साथ पूर्व पाई गई शिक्षा को आत्मसात् कर लेना, अनुभव होता है।

कुलगुरू आङ्गिरस गोत्रोत्पन्न शतानन्द के कथनोपरान्त राजा जनक भी सन्तान प्रेम से भावविभोर हो संयम न रख सके वाचाल हो उठे और उनकी शिक्षा निश्चय की प्रेरणादायी है आदर्श है–

"अभ्युत्थानमुपागते गृहपतौ तद्भाषणे नम्रता
तत्पादार्पित दृष्टिरासन विधिस्तस्योपचर्या स्वयम्।
सुप्ते तत्र शयीत तत्प्रथमतो जह्याच्च शय्यामिति
प्राच्यैः पुत्रि निवेदिताः कुलवधू सिद्धान्त धर्मा अमी।।"

हे पुत्री! प्राचीन लोगों ने कुलवधुओं के लिए ये सिद्धान्त– धर्म बताए हैं– गृहपति के आने पर उठ जाना, उससे बात करने में नम्रता, उसके पैरों में प्रदत्त दृष्टि का आसन, उसकी स्वयं पूजा, उसके सोने पर सोना और उससे पहले ही शय्या छोड़ देना।

राजा जनक के द्वारा अपत्य स्नेहवश शिक्षा दी गई है और वैसा ही स्नेह श्वसुर दशरथ के कथन में झलकता है–

"सुकुमारा राजपुत्री दुःसञ्चारा चित्रकूटगिरेरण्यानो।"

पुत्रवधु के आदरपूर्ण कार्यव्यवहार, मर्यादित आचरण, उत्तरदायित्वों का निर्वहन निश्चित रूप से पुत्रवधू को पुत्री बना देता है और दशरथ का कथन इसका उदाहरण है।

चित्रकूट पर्वत पर पहुँचकर वे सीता जो सुकुमारी हैं, पति की अनुगामिनी हैं इसलिए वे हर कार्य कर रही हैं जो पति राम कर रहे हैं। यहॉ सीता की अद्भुत कर्त्तव्यनिष्ठा एवं पतिपरायणता परिलक्षित हो रही है।

सीता विदाई पर शतानन्द के द्वारा जो शिक्षा दी गई वह सहृदयता की पोषक है, भारतीय संस्कृति में नारी चरित्र की उत्कट भावना है, उत्कर्ष है–

"निर्व्याजा दयिते ननान्दृषु नता श्वश्रुषु भक्ताभव
स्निग्धा बन्धुषु वत्सला परिजने स्मेरा सपत्नीष्वपि।
पत्युर्मित्रजने सनर्मवचना खिन्ना चतद्द्वेषिषु

स्त्रीणां संवननं नतभ्रु तदिदं चीतौषधं भर्तुषु।।"

अपनी प्रिय तथा ननदों में निर्व्याज (अहैतुक) नम्र तथा सासों की भक्त बनों, बन्धुओं में कोमल, परिजनों में वत्सल, सपत्नियों पर भी स्मितमुखी, पति के मित्रजनों में परिहास वाली बनों तथा उसके शत्रुओं पर खिन्न बनो– हे नम्र भ्रूवाली सीते। स्त्रियों का पतियों को वश में करने की यह प्रिय औषधि है।

सीता की कोमलता, उदारता और नारी का मूलाधार गृहिणीत्व, वह पवित्र गृहिणीत्व यहॉ दृष्टि गोचर होता है–

"यदास्वाद्यं सीता वितरति तदग्रे स्वगृहिणे
सुमित्रापुत्राय प्राणिहितशेषं च तदनु।
यदामं वा नामं यदनतिरसं यच्च विरसं
फलं वा मूलं वा रचयति तु तेन स्वमशनम्।।"

वे सीता जो आस्वाद्य है उसे सीता पहले पति को देती है और उसके बाद समग्र सुमित्रा पुत्र लक्ष्मण को और उसके बाद जो कच्चा या पका अत्यन्त रस से रहित और रसहीन फल अथवा मूल बचता है उससे अपना आहार करती है। वह राजकुमारी, सुकुमारी सीता विभिन्न प्रकार के पकवानों का सेवन करने वाली, कोमलता की मूर्ति, वात्सल्यमयी, ममतामयी सीता अब वन में नीरस फल, मूल खा रही है। यह भारतीय संस्कृति की गरिमा है। मिथिला नरेश की शिक्षा का निर्वहन है। मधुर औषधि है। प्राप्त की गई शिक्षा को, प्राचीन धर्मों को अपने में आत्मसात् करती हुई सीता, पत्नी धर्म को निभाती हुई, पति सेवा प्रसन्नतापूर्वक कर रही हैं, पति का अनुगमन कर रही हैं–

"धरणितलनिषण्णं वत्सविश्रान्तिहेतो–
व्यजति जनकपुत्री वाससः पल्लवेन।"

रामचन्द्र पर जनक पुत्री सीता वस्त्रों से हवा कर रही हैं। विन्ध्य में हाथी, भालू, सिंह, गज, लंगूर, पुलिन्द (वन्य मनुष्य जाति) और हिंसक प्राणी घूमते रहते हैं। मार्ग पत्थरों भरा, लताऐं कॉटों भरी, चीटिंयों की बॉबियाँ हैं, उसको पार करती हुई प्रकृति सुकुमारी सीता वनमार्ग पर चल रही हैं। वे सुकुमार सीता–

"मूले मूले पथि विटपिनां खेदनी दीर्घमास्ते
शुष्यत्कण्ठी पिवति सलिलं निर्झरे निर्झरे च।
जातत्रासा निमिषति दृषं कन्दरे कन्दरे च
स्थाने स्थाने वहति च मतिं बद्ध वासभिलाषा।।"

रास्ते में वृक्षों के नीचे थककर बैठती हैं तथा झरनों में कण्ठ सूखने पर जल पीती हैं और कन्दराओं में भय होने से आँखें मूँद लेती हैं एवं स्थान–स्थान पर निवास करने की इच्छा करती हैं।

राजशेखर का यह श्लोक स्वाभाविकता की अनुभूति सहृदय को करा जाता है। सुकुमार सीता की धैर्यता, यह चरित्र–व्यक्तित्व स्त्री पुरूष समाज, परिवार को बॉधता है और यही तो धर्म है। पति के लिए हर कष्ट को सहने के लिए तत्पर रहना, हार्दिक अनुभूति के उच्च धरातल पर पहुॅचकर कर्त्तव्य कर्म पथ पर अग्रसर होना निश्चित ही वन्दनीय है, श्लाधनीय है।

सीता को शिक्षित किया गया कि 'श्वश्रुषु भक्ता भव' वह व्यवहार में तब दिखा जब वनगमन के समय वामदेव के द्वारा यह कथन कहा गया–

"भर्तुश्चानुगताविह क्षितिभुवा श्वश्रुजनो वन्दितः।"

यहाँ पारिवारिक मधुरता श्वश्रु व पुत्रवधू के बीच आदर का, प्रेम का भाव सीता के व्यवहार से परिलक्षित हो रहा है। सीता तो भारतीय संस्कृति की मूर्ति ही हैं। वहीं कौशल्या स्नेहवश, स्नेह से शपथपूर्वक वल्कल वस्त्र न धारण करने देती है और सीता का वल्कल वस्त्र न धारण करना अपनी श्वश्रु–माँ कौशल्या की आज्ञा मानना है।

सीता के चरित्र की उदात्तता उस समय परिलक्षित होती है जब सीता अग्नि परीक्षा के समय भी विचलित हुए बिना अपनी सत्यता को अग्रगण्य कर अग्निदेव से रक्षार्थ प्रार्थना करती हैं, उसमें कितना विश्वास है, पवित्रता है, स्वाभाविकता है–

"मित्रं मन्त्री गुरूः शिष्यः स्वामी भृत्यश्च में सदा
राम एव यथा नान्यस्तथा मां पातु पावकः।।"

सर्वस्व समर्पण की भावना के अनन्तर ही ऐसी प्रार्थना निकलेगी। निर्भय होकर जो प्रार्थना सीता के द्वारा की गई वह प्राप्त शिक्षा को आत्मसात कर लेने पर ही सम्भव है और अग्नि में आहुति के लिए प्रस्तुत हो गई। सत्यनिष्ठ को भी सत्य की परीक्षा के लिए कहा जाए तो उसके स्वाभिमान को आघात पहुँचता है, किन्तु सीता–

"सीतामुदीक्ष्य सुमुखीं शिखिनः।"

सत्यता व पतिव्रता का तेज उनको प्रसन्नमुखी बना रहा है। वही तेजस्विता अग्नि को अपने तेज को जल की भाँति शीतल करने पर विवश कर रही है, क्योंकि सभी लोग गुणों से पूजनीय होते हैं, शरीर से नहीं–

"सर्वो गुणेषु रज्यते न शरीरेषु।"

सत्य है गुण ही सर्वोपरि माने गए हैं। सीता का निराभिमानी होने को एक उदाहरण मर्मस्पर्शी है–

"पादाङ्गगुष्ठ नखाग्रदन्तनयना।"

अग्नि में स्वयं को समर्पित कर सीता पूर्व की ही तरह निर्मल, कान्तियुक्त सिर झुकाकर पाद के अंगुष्ठ के अग्रभाग पर दृष्टि लगाए हुए बाहर आई, उनमें अपनी पवित्रता का कोई अभिमान नहीं था। ऐसा सर्वगुण सम्पन्न व्यक्तित्व राजशेखर के बालरामायण में सीता का है जो कि प्रेरणादायक है। जिस प्रकार शरीर के पोशण, परिवर्धन के लिए, अच्छे स्वास्थ्य के लिए अच्छा सन्तुलित भोजन, फलादि अत्यन्त आवश्यक है, उसी प्रकार आत्मा, मन, मस्तिष्क के लिए सद्शिक्षा, उच्च सिद्धान्त, धर्म नैतिक मूल्य– दया, श्रद्धा, मैत्री, क्षमा, तुष्टि, शान्ति, विनय आदि जो भारतीय संस्कृति के मूलधर्म पोषक तत्त्व हैं आवष्यक हैं।